Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
June 2024 5(6), 2713–2717

TIME SCIENCE CONTAINED IN SANSKARS: A STUDY

संस्कारों में समाहित कालविज्ञान : एक अध्ययन

Dhananjay Mani Tripathi [1]

[1] Department of Sanskrit, Jamia Millia Islamia, New Delhi 110025, India

Corresponding Author
Dhananjay Mani Tripathi,
dtripathi@jmi.ac.in

DOI
10.29121/shodhkosh.v5.i6.2024.5894

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2024 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

ABSTRACT

English: Ancient Indian sages and thinkers propounded rituals for personality development and meaningfulness of social life. The rituals prescribed in religious texts destroy the mental disorders of humans from before birth and inculcate purity in them. All the things that exist in the world are natural. Just as all things are made to suit one's needs and used, similarly, purity is inculcated in humans through rituals and defects are removed. Determination of time is of utmost importance in performing rituals. Which ritual should be performed when and how, i.e. which time will be appropriate for which ritual and which will not? Knowledge of this situation can be known only through astrology.

Hindi: प्राचीन भारतीय ऋषि-मनीषियों ने व्यक्तित्व विकास तथा सामाजिक जीवन की सार्थकता के लिए संस्कारों को प्रतिपादित किया। धर्मशास्त्र विहित संस्कार जन्म के पूर्व से ही मानव के मनोविकारों को नष्ट करके उसमें पवित्रता का समावेश करते हैं। संसार में जितनी वस्तुएँ विद्यमान हैं, वे सब प्राकृतिक हैं। जिस प्रकार सभी वस्तुओं को अपने अनुरूप बनाकर प्रयोग में लाया जाता है, उसी प्रकार संस्कारों के द्वारा मनुष्यों में शुद्धता का समावेश करके दोष दूर किये जाते हैं।संस्कारों के सम्पादन में कालनिर्णय का सर्वाधिक महत्त्व होता है। कौन सा संस्कार कब और कैसे करना चाहिए अर्थात् किस संस्कार के लिए कौन सा काल उचित होगा और कौन सा नहीं? इस परिस्थिति का ज्ञान केवल ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से ही जाना जा सकता है।

Keywords: Sanskar, Muhurta, Dharmashastra, Kaal, Garbhdhaan, Punsavan, Soshyantikarma, संस्कार, मूहूर्त, धर्मशास्त्र, काल, गर्भाधान, पुंसवन, सोष्यन्तीकर्म

1. प्रस्तावना

संस्कार शब्द की निष्पत्ति सम उपसर्ग कृ-धातु पर घञ् प्रत्यय के योग से की जाती है। परन्तु इससे 'सङ्कर' पद की प्राप्ति होती है। 'संस्कार' शब्द बनाने के लिए अतिरिक्त ध्वनि सकार की आवश्यकता होती है। व्याकरण की दृष्टि में इस सकार के लिए सुट् के आगम की आवश्यकता पड़ेगी। महामुनि पाणिनि के अनुसार यह सुडागम तभी होता है जब पद भूषणार्थक हो।[1] इस प्रकार संस्कार का अर्थ निकलता है-बुद्धि, परिष्कार, परिमार्जन, सज्जा, शोध, संस्करण, शुद्धीकरण, प्रशिक्षण, स्वभाव, मनोभाव, धर्मिक अनुष्ठान आदि। कुछ विद्वान् संस्कारों का अभिप्राय शुद्धि की धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के दैहिक, मानसिक और बौद्धिक परिष्कार के लिए किये जाने वाले अनुष्ठानों को लेते हैं।[2] आचार्य चरक के अनुसार 'संस्कारो हि गुणान्तराधनमुच्यते' अर्थात् पहले से विद्यमान दुर्गुणों को परिमार्जित कर यहाँ अच्छे गुणों का आधान करना ही संस्कार है। इस सन्दर्भ में तन्त्रावार्तिककार का कहना है – 'योग्यतां चादधानाः क्रियाः संस्कारा इत्युच्यन्ते' अर्थात् संस्कार वे क्रियाएँ विधियाँ हैं जो मानव को विभिन्न कृत्यों के योग्य बनाती हैं। यह

[1] संपर्युपेभ्यः करोतौ भूषणे । अष्टाध्यायी 6.1.1.37

[2]हिन्दू संस्कार, राजबली पाण्डेय, पृ. 19

योग्यता जिन दो रूपों में प्राप्त होती हैं वे हैं- (क) दोषों का परिमार्जन, (ख) गुणों का आधान। इसमें तप से तो दोषों का परिमार्जन होता है तथा संस्कारों से नवीन गुणों का आधान। यहाँ यह शङ्का उठती है कि क्या गुणों का आधान सम्भव है? यतो हि माता-पिता के रजस् और वीर्य से बच्चे का जन्म होता है और जैसा बीज होगा उसी प्रकार की सन्तान होगी।[3] इस सम्बन्ध में समाजशास्त्रियों ने एक मध्यम-मार्ग को अपनाया है, जो इस बात पर जोर देता है कि माता-पिता द्वारा प्राप्त संस्कारों की क्षमता पर शङ्का नहीं की जा सकती, लेकिन इतना अवश्य है कि उचित वातावरण और कुछ कृत्यों प्रक्रियाओं के द्वारा पुराने संस्कारों को परिवर्तित करने की कोशिश की जा सकती है। ज्योतिषशास्त्र को पूर्णतः भाग्यवादी माननेवालों के लिए यहाँ स्पष्ट कर देना अनिवार्य होगा कि यह विद्या भी इस व्यावहारिक सिद्धान्त का अवगमन करती है- कुछ पूर्वजन्म के सञ्चित कर्मों से जातक एक विशेष काल में जन्म लेते हैं। यद्यपि मानव के प्रत्येक काल का अपना पृथक् महत्व है, तथापि अपने जन्मकाल की स्थिति से वह आजीवन प्रभावित होता है। जन्म लेते ही जातक कुछ गतिविधियाँ करता है- इनमें से कुछ गतिविधियों का कारण उसकी सहजात अभिरुचि तथा कुछ अन्य गतिविधियाँ उसकी स्वतन्त्र इच्छा से होती हैं। स्वतन्त्र इच्छाओं पर हम पूर्णतः अंकुश लगा सकते हैं- कुछ सीमा तक जन्मजात रुचियों में भी परिवर्तन किया जा सकता है। यथा- राहु व मङ्गल के प्रभावकाल में उत्पन्न जातक अपराधी बनता है- यदि इस समान्य नियम से किसी की जन्म कुंडली पर विचार किया जाय तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि उसके भाग्य में ही ऐसा है। इसका अभिप्राय मात्र इतना है कि वह जातक इस स्वभाव का है कि जिसके अन्दर अपराध व आतङ्क की ओर झुकाव होगा। समुचित शिक्षण, संस्कार और पर्यावरण द्वारा ऐसी वृत्तियों को रोकने का प्रयास किया जा सकता है। धर्मशास्त्र, मानवशास्त्र है- इसका लक्ष्य है मानवमात्र का कल्याण। धर्मशास्त्र का बल सर्वदा ही इस बात पर रहा है कि मानव का सर्वथा नूतन निर्माण तो नहीं किया जा सकता है किन्तु इतना अवश्य है कि उचित संस्कारों के माध्यम से और उत्तम वातावरण तैयार कर मानव का नवनिर्माण किया जा सकता है। संस्कार मानव को समाज में रहने के अनुकूल बनाते हैं। जिस प्रकार अनेक वर्णों के भरने से एक चित्र सुन्दर और सजीव बन जाता है, उसी प्रकार विभिन्न कालों के लिए नियत संस्कारों के द्वारा मानव निखर उठता है।[4] संस्कार संस्कृति की स्वाभाविक क्रिया है। इसके माध्यम से ही यह नूतन ऊर्जा प्राप्त कर सतत गतिशील बनी हुई है। राष्ट्र, समाज, परिवार और व्यक्ति-सभी को संस्कारों की आवश्यकता होती है। संस्कार के अभाव में हम भोजन भी नहीं कर सकते। जिन भोज्य सामग्रियों का हम सेवन करते हैं, वे अपने उत्पन्न हुए रूप में हमारे लिए उपयोगी नहीं हो सकते, अपितु उपयोग में लाने के लिए इनको भी कई प्रकार से संस्कारित करना पड़ता है। इत्थमेव सद्यः जात बालक संस्कार के बिना राष्ट्र, समाज और परिवार के किसी भी काम नहीं आ सकता। भारतीय धर्मशास्त्र में प्रयुक्त संस्कार शब्द का दूसरी भाषाओ में अनुवाद इनके कुछ अंशों का द्योतन मात्र है । यथा- अंग्रेजी का सिरीमॅनी (Ceramony), राइट् (Rite), सेक्रामेण्ट (Sacrament) इत्यादि। संस्कार का अभिप्राय बाह्य क्रियाओं से अथवा औपचारिकताओं मात्र से नहीं है, अपितु यह तो मानव का आन्तरिक तथा आत्मिक है साथ ही बाह्य तथा सर्वांगीण विकास करने वाला है ।

संस्कारों की संख्या: प्राचीन आचार्यों में संस्कारों की संख्या, विधिविधान को लेकर प्रायः एकमत्य नहीं है। गृह्यसूत्रों में संस्कारों का वर्णन निम्नाङ्कित प्रकार से पाया जाता है-

आश्वलायन गृह्यसूत्र: विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, चूडाकर्म, अन्नप्राशन, उपनयन, समावर्तन, अन्त्येष्टि ।

पास्करगृह्यसूत्र: विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, उपनयन, केशान्त, समावर्तन, अन्त्येष्टि ।

बौधयनगृह्यसूत्र: विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, उपनिष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, समावर्तन, पितृमेध ।

वाराह गृह्यसूत्र: जातकर्म, नामकरण, दंतोद्गमन, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, उपनयन, वेदव्रताग्नि, गोदान, समावर्तन, विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन ।

गौतम धर्मसूत्र में आठ अत्मगुणों के साथ चालीस संस्कारों का वर्णन प्राप्त होता है। ये हैं- गर्भाधान, पुंसवन, सीमान्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौल, उपनयन, चार वेदव्रत, समावर्तन, विवाह, पञ्चमहायज्ञ (देव, पितृ, मनुष्य, भूत एवं ब्रह्म), सप्त पाकयज्ञ (अष्टक, पावर्ण, श्राद्ध श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री और आश्वयुजी), सप्त हविर्यज्ञ अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रयण, चातुर्मास्य, सप्तसोमयज्ञ (अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्रा, आप्तीर्यामि) ।

गौतम मुनि के इस संस्कार परिगणन में यज्ञों व संस्कारों में कोई स्पष्ट अन्तर नहीं दिखता। मनुस्मृति[5] में गर्भधारण से अन्त्येष्टि पर्यन्त त्रयोदश संस्कार परिगणित हैं -

1. गर्भाधान 2. पुंसवन 3 . सीमन्तोनयन 4.जातकर्म 5. नामकरण 6. निष्क्रमण 7. अन्नप्राशन 8. चूडाकर्म 9 उपनयन/मौजीबन्धन 10. के शा न्त 11. समावर्तन 12. विवाह 13. अन्त्येष्टि

याज्ञवल्क्य-स्मृति में केशान्त को छोड़कर लगभग यही संस्कार परिगणित हैं।

[3] रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्यं तदैव नैसर्गिकमुन्नतत्वम् । रघुवंश 5.37

[4] चित्रकर्म यथाऽनेकैः रङ्गैरुन्मील्यते शनैः। ब्राह्मण्यमपि तद्वत् स्यात् संस्कारैः विधिपूर्वकम्।

[5] मनुस्मृति 2.16,26,29, 3.1-4

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपलब्ध धर्मशास्त्र व साहित्य में दस ग्यारह से लेकर चालीस तक संस्कारों की संख्या प्राप्त होती है। संस्कारों की संख्या उनकी संज्ञाओं तथा परिगणन क्रम में जो वैषम्य मिलता है, उसका कारण लगता है कि धर्मशास्त्राकारों ने अपने स्थानीय मान्यताओं और अपने काल में प्रचलित मान्यताओं को ही आधार बनाया है। संख्या सम्बन्धी मतैक्य न होनेपर भी प्रायः समाज में षोडश-संस्कारों का प्रचलन सर्वदा से रहा है। ये सोलह संस्कार हैं-

1. गर्भाधान 2. पुंसवन 3. सीमन्तोन्नयन 4. जातकर्म, 5. नामकरण 6. निष्क्रमण 7. अन्नप्राशन 8 . चूडाकर्म 9. कर्णभेध 10. उपनयन 11. वेदारम्भ 12. समावर्तन 13. विवाह 14. वानप्रस्थ 15. संन्यास और 16. अन्येष्टि ।

इस सन्दर्भ में एक बड़ी रुचिकर बात यह है कि यद्यपि संस्कारों का विधान एवं विवेचन मुख्यतः गृह्यसूत्रों में पाया जाता है, किन्तु उनमें वैखानस को छोड़कर अन्य किसी में इस शब्द ('संस्कार') का प्रयोग नहीं पाया जाता है। इसका प्रयोग धर्मसूत्रकाल में होने लगा था (गौतम ध.सू. 8.8, आप. ध.सू. 1.1.1.19, वशिष्ठ ध.सू. 4.1 आदि) ।[6]

2. प्राक् जन्म संस्कार और ज्योतिषशास्त्र

गर्भाधान का अर्थ है- गर्भ का आधान अर्थात् गर्भ स्थापित करना। धर्मशास्त्र साहित्य में यह संस्कार ऋतुसंगमन, निषेक, चतुर्थी कर्म, गर्भलम्मन आदि नामों से मिलता है। चूंकि स्त्री पुरुष के बीज को धारण करती है अतएव इसे 'गर्भलम्भन' कहा जाता है। मनुस्मृति[7] में ऋतुकाल में ही समागम का निर्देश दिया गया है । अतएव इसे ऋतु-संगमन कहा गया, जबकि सुश्रुत संहिता[8] की मान्यता है कि स्त्री ऋतु काल में चौथे दिन शुद्ध मानी जाती है, सम्भवतः इसी कारण इस संस्कार का नाम 'चतुर्थी-कर्म' पड़ा होगा। स्त्री-पुरुष के मिलन से समाज को एक नया व्यक्ति मिलता है, इसलिए इसे काम-क्रीडा नहीं माना जा सकता है। यदि भावी सन्तान अच्छे आचरण वाली हुई तो समाज को अच्छी दिशा दे सकती है, किन्तु यदि दुष्ट सन्तान हुई तो समाज की विपरीत दिशा भी हो सकती है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए धर्म शास्त्रियों द्वारा गर्भाधान को सामाजिक तथा धर्मिक पवित्र संस्कार बना दिया गया। प्रायः सभी शास्त्रों व स्मृतियों में गर्भाधान संस्कार की व्यवस्था की गयी है। सुश्रुत संहिता[9] के अनुसार जैसे ऋतु, क्षेत्र, अम्बु और बीज इन चारों के विधिपूर्वक मिलने से अंकुर पैदा होता है, उसी तरह स्त्री-पुरुष के विधिपूर्वक मिलने से एक सन्तान का जन्म होता है। यहाँ ध्यातव्य है कि जितना महत्व क्षेत्र और बीज का है उतना ही उपयुक्त समय का योगदान है। इसी कारण ज्योतिषशास्त्रियों ने इस निमित्त उपयुक्त काल का निर्धारण संहिता ग्रंथों में किया है।

3. मुहूर्त

1) तीनों उत्तरा, मृगशिरा, हस्त, अनुराधा , रोहिणी, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा एवं शतभिषा- इन ग्यारह नक्षत्रों में गर्भाधान करना उत्तम माना गया है।[10]

2) केन्द्र व त्रिकोण में शुभग्रह हों, तृतीय षष्ठ व एकादश भाव में पापग्रह आधान लग्न को पुरुष ग्रह देखते हों, विषम राशि के नवमांश में चन्द्रमा हो और रजोदर्शन में सम रात्रि में गर्भाधान करना उत्तम होता है।[11]

3) चित्रा, पुनर्वसु, पुष्य एवं अश्विनी इन चार नक्षत्रों में गर्भाधान मध्यम माना जाता है।[12]

गर्भाधान के अनुष्ठान के सम्बन्ध में मतभेद पाया जाता है । हिरण्य०गृ०सू० (1.7.25.3) के अनुसार यह संस्कार गर्भाधान की कामना से किये गये प्रत्येक संभोग के समय किया जाना चाहिए, किन्तु बादरायण का कहना है कि यह केवल प्रथम संभोग के समय तथा उसके बाद प्रत्येक मासिक स्राव के उपरान्त किया जाना चाहिए ।[13]

[6] हिन्दू संस्कारों का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक समीक्षण, डी.डी. शर्मा, पृष्ठ सं. 4

[7] मनुस्मृति 3.45

[8] शरीर स्थान, 2.25-27

[9] ध्रुवं चतुर्णा सान्निध्यात् गर्भः स्याद् विधिपूर्वकः । ऋतुत्राम्बुबीजानां संयोगादङ्कुरो यथा॥ सुश्रुत संहिता,शा. स्था.2.34

[10] मुहूर्तचिन्तामणि 5.6

[11] मुहूर्तचिन्तामणि 5.7

[12] मुहूर्तचिन्तामणि 5.7

[13] द्रष्टव्य- धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 182

पुंसवन : याज्ञवल्क्य के अनुसार पुत्र के लिए किया गया यज्ञ पुंसवन है।[14] इसी प्रकार आश्वलायन गृह्यसूत्र के अनुसार भी यह वह कर्म है जिससे गर्भिणी पुरुष सन्तान उत्पन्न करे। इसमें कुछ विरोधी बातें सुश्रुत संहिता[15] व मनुस्मृति में प्राप्त होती हैं। इनके अनुसार गर्भाधान काल में पुरुष के शुक्रबाहुल्य से पुत्र उत्पन्न होता है जबकि स्त्री के अण्ड बाहुल्य से पुत्री । अर्थात् गर्भस्थापन काल में ही पुत्र अथवा पुत्री का निश्चय हो जाता है। साम्प्रतं आधुनिक विज्ञान इसे ही क्रोमोजोम की निर्बलता और प्रबलता के रूप में बताता है। वाई-क्रोमोजोम से पुत्र व एक्स-क्रोजोम से पुत्री की उत्पति होती है। यहाँ दूसरी शङ्का यह हो सकती है कि यदि पुंसवन संस्कार से पुत्र उत्पन्न हो तो कितने ही समाज में जो पुत्री की कामना करेंगे। इससे स्पष्ट है कि पुंसवन को पुत्रोत्पत्ति का संस्कार मानना अनुचित है। इसका प्रयोजन यह है कि सामर्थ्य युक्त अथवा पौरुषयुक्त सन्तान चाहे वह पुत्र हो, अथवा पुत्री । वैदिक साहित्य में भी पुत्र अथवा पुत्री में कोई उच्च-नीच का विभेद नहीं है। इस सन्दर्भ में यह ध्यातव्य है कि पुंसवन संस्कार गर्भस्थ शिशु के शारीरिक लाभ के लिए संपन्न कराया जाता है न कि पुत्र लाभ के निमित्त। इस संस्कार के समय माँ के दक्षिण-नासा रन्ध्र में वटवृक्ष का रस डाला जाता है। वटवृक्ष का रस गर्भपात से बचाता है। सुश्रुत[16] के अनुसार वट द्रव में ऐसे गुण होते हैं- जिनसे गर्भ के समय होने वाली आंतरिक कष्टों से शांति मिलती है। इस संस्कार के दौरान प्रतीकात्मक रूप से गर्भिणी के गोद में जल से भरा पात्र रखा जाता है। इस दौरान पति द्वारा पत्नी का हृदय स्पर्श किया जाता है जो कि माँ के लिए मनोवैज्ञानिक सुरक्षा प्रदान करता है ।

उचित काल- स्मृतियों[17] में गर्भ के गतिशील होने के पूर्व इस संस्कार को करने का निर्देश दिया गया है। कुछ धर्मशास्त्राकार गर्भ के स्पन्दनशील होनेके पश्चात् इसे करने को कहते हैं तो कुछ का मानना है कि गर्भधारण के स्पष्ट हो जाने पर उसके तीसरे माह में यह संस्कार करना चाहिए।[18] पारिवारिक परम्पराएँ एवं कुलाचार के मतैक्य न होने के कारण प्रायः गर्भ के द्वितीय से अष्टम मास तक इस संस्कार को करने का विधान है।

मुहूर्त- यह संस्कार तीसरे माह में किया जाता है। चूंकि यह नियतकालिक है अतः इसमें मलमास आदि का विचार नहीं करना चाहिए। मुहूर्तचिन्तामणि[19] के अनुसार निम्नलिखित स्थिति में इस संस्कार का आयोजन उत्तम है-

1) तिथियाँ-प्रतिपदा, द्वितीया, चतुर्थी, एकादशी एवं द्वादशी।
2) वार-रवि, मङ्गल एवं गुरु।
3) पक्ष- शुक्लपक्ष उत्तम, अथवा कृष्णपक्ष की दशमी पर्यन्त ।
4) नक्षत्र- मृगशिरा,पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, मूल, श्रवण ।
5) योग- विष्कृम्भ, व्याघात, परिघ्, यस, व्यतीपात, वैवृति, गण्ड एवं शूल को छोड़कर अन्य किसी भी योग में।
6) स्त्री का चन्द्रमा चतुर्थ, अष्टम एवं द्वादश में न हो।
7) लग्न- मिथुन, सिंह, धनु, कुम्भ एवं मीन।
8) लग्न से केन्द्र या त्रिकोण में शुभग्रह, त्रिषडाय में पापग्रह और लग्न पर पुरुष ग्रह की दृष्टि हो तो उत्तम ।

सीमन्तोन्नयन संस्कार : जिस सस्कार में गर्भिणी के सीमन्त ऊपर उठाए जायें वह सीमन्तोन्नयन संस्कार है।[20] गृह्यसूत्रों में इस संस्कार के पक्ष में यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि गर्भकाल में गर्भ की हानि के लिए कुछ अनिष्टकारी शक्तियाँ प्रवृत्त होती हैं उनके निवारणार्थ दम्पती को सतर्क रहने के लिए इसका आयोजन किया जाना चाहिए।[21] सीमन्तोन्नयन को मस्तिष्क का उन्नयन अथवा मानसिक तौर पर मजबूत करना भी समझा जा सकता है। इससे दम्पती का ध्यान गर्भस्थ शिशु के मानसिक विकास पर केन्द्रित कराया जाता है। सीमन्तोन्नयन माता की प्रसन्नता के लिए भी किया जाता है क्योंकि मनोभावों का सीधा प्रभाव गर्भस्थ सन्तान पर पड़ता है साथ ही प्रजनन सम्बन्धी अनुभवों से अनभिज्ञ गर्भवती युवती का मन अनेक प्रकार की आशंकाओं से आतंकित होता है, ऐसे समय में उसकी तथा उसके गर्भ की सुरक्षा के लिए किये जा रहे प्रयत्नों के मध्य पति के द्वारा उसका केश संस्कार किया जाना स्वभावतः उसके लिए एक गौरव की बात के साथ-साथ उसे प्रसव सम्बन्धी कष्टों के सहन के लिए मनोबल भी प्रदान करना था । दोहद की पूर्ति न होने

[14] याज्ञवल्क्य स्मृति 1/11

[15] शारीरक स्थान 3.5

[16] सूत्रस्थान 38

[17] याज्ञवल्क्य स्मृति 1/1

[18] द्रष्टव्य- हिंदू संस्कार, पृष्ठ सं.75

[19] मुहूर्तचिन्तामणि 5.10

[20] सीमन्तः उन्नीयते यस्मिन् कर्मणि तत् सीमन्तोन्नयनमिति नामधेयम् ।

[21] (क) आश्वलायन गृह्यसूत्र -1.14.1-9, (ख) याज्ञवल्क्य स्मृति1.11

पर गर्भ सदोष हो जाता है। इस संस्कार को चौथे माह में करने की व्यवस्था धर्मशास्त्र करता है। चिकित्साशास्त्र[22] के अनुसार चौथे माह में सन्तान का अङ्ग-प्रत्यङ्ग व्यक्त होने लगता है और स्नायुतंत्र का निर्माण हो जाता है।[23]

मुहूर्त- सीमन्तोन्नयन संस्कार के लिए ग्रह-नक्षत्रादि की स्थिति पुंसवन संस्कार के समान ही बतायी गयी है।[24]

जातकर्म पूर्व संस्कारों के क्रम में सोष्यन्तीकर्म एक प्रजनन से जुड़ा हुआ वैदिक अनुष्ठान[25] है जिसे शिशु के जन्म से पहले प्रसव पीड़ा प्रारम्भ होने पर किया जाता है। इसकी चर्चा आपस्तम्बगृह्यसूत्र[26], हिरण्यकेशिगृह्यसूत्र[27], भारद्वाजगृह्यसूत्र[28], गोभिलगृह्यसूत्र[29], खादिरगृह्यसूत्र[30], पारस्करगृह्यसूत्र[31], काठकगृह्यसूत्र[32] में हुई है, अतः यह अति प्राचीन संस्कार है ।

प्राक् जन्म संस्कारों का उद्देश्य है मानव का विकास-उनमें सामाजिक दायित्वबोध की भावना जागृत करना तथा समाज में जीवन यापन करने के लिए पर्याप्त क्षमता शक्ति देना। यह व्यक्तित्व विकास एक दिन की प्रक्रिया नहीं है, अपितु यह आजीवन चलने वाला सतत प्रक्रम है। कभी-कभी कोई एक घटना हमारे जीवन को एकाएक बदल देती है, लेकिन ऐसा भी उनके साथ ही होता है, जिनमें एतदर्थ मानसिकता पहले से विद्यमान रहती है अथवा इस परिवर्तन के लिए पहले से आधारतत्त्व उपस्थित हों। अतः सामाजिक मानवीय गुणों के विकास में सदियों व सस्राब्दियों के संस्कार ही काम करते हैं। हमारे त्रिकालदर्शी ऋषि-महर्षियों ने समाज को सही दिशा देने के लिए लोगों को एक निश्चित साँचे में ढालने की आवश्यकता समझी और अपने पर्याप्त अनुभवों का प्रयोगकर इन संस्कारों की व्यवस्था दी जो आज भी उतने ही व्यावहारिक हैं, जितने कि प्राचीन समाज में क्योंकि मानव का लक्ष्य आज भी वही है जो प्राचीन समाज में था। संस्कारों का एक चरम लक्ष्य होते हुए भी छोटे-छोटे अपने लक्ष्य हैं। हमारे त्रिकालज्ञ दैवज्ञों ने काल के महत्त्व को जाना और उनकी सर्वसम्मत मान्यता रही कि जीवन में घटित होने वाली समस्त घटनाएँ ग्रह-नक्षत्रों की गतिविधियों के साथ सापेक्षता रखती हैं। इस आधार पर उन्होंने अपनी अन्तर्दृष्टि और पर्यवेक्षण शक्ति का प्रयोग कर यह निर्धारित किया कि कोई कार्य विशेष अथवा संस्कार विशेष किसी निश्चित काल परिधि में किया जाना उचित होगा। इसके पीछे इस संस्कार विशेष को अथवा कार्य विशेष को और अधिक उपयोगी व सार्थक बनाना ही उनका लक्ष्य था। प्राचीन समय से ही काल का सूक्ष्म से सूक्ष्म विभाजन होता आया है। भारतीय धर्मशास्त्रकारों ने सोलह संस्कारों के द्वारा मानव के व्यक्तित्व को परिष्कृत करके सामाजिक संतुलन बनाये रखने की ओर प्रेरित किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मनुस्मृति, हरगोविन्द शास्त्री (हिन्दी अनुवाद), चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
याज्ञवल्क्य स्मृति, उमेश चन्द्र पाण्डेय (हिन्दी अनुवाद), चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
सुश्रुत संहिता, अम्बिकादत्त शास्त्री (हिन्दी व्याख्या), चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, भाग-1-2
धर्मशास्त्र का इतिहास, पी.वी. काणे, (हिन्दी अनुवाद- अर्जुन चौबे काश्यप), उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, भाग-1-5
हिन्दू संस्कार, राजबली पाण्डेय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
हिन्दू संस्कारों का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक समीक्षण, डी.डी. शर्मा, प्रकाश बुक डिपो, बरेली
धर्मसूत्रों का महत्त्व (वर्तमान परिप्रेक्ष्य में), नयनतारा बंसल, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली
संस्कार प्रकाश, भवानी शङ्कर त्रिवेदी, श्री लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली

[22] सुश्रुत संहिता-शारीरकस्थान 3.21
[23] चतुर्थे मासे सीमन्तोन्नयनम्। आश्वलायन गृ.सू. 1.14.1
[24] मुहूर्तचिन्तामणि 5.8
[25] ऋग्वेद 5.78.7-9
[26] 14.13-15
[27] 2.2.8
[28] 1.22
[29] 2.7.13-14
[30] 2.2.29-30
[31] 1/16
[32] 33.1-3